इन्द्रिय-विज्ञान की भूमिका

श्रमण संघीय प्रवर्तक श्री रमेशमुनिजी महाराज

भारतीय दर्शनिकों ने मन-योग को काफी चर्चा का विषय बनाया है । भिन्न-भिन्न उपमाओं से मन को उपमित किया । इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न अभिव्यक्तियाँ प्रस्तुत हुईं । अलग-अलग विद्वानों-लेखकों द्वारा विभिन्न मंतव्य उल्लिखित हुए मन के संबंध में ।

माना कि मन का महत्व अपने स्थान पर है । मन का वेग, मन की प्रवृत्ति और मन का कार्यक्षेत्र काफी विस्तृत रहा है । उसी प्रकार इन्द्रियों का प्रभाव भी कम नहीं समझना चाहिये । इंद्रियों की प्रवृत्ति और इन्द्रियों का कार्यक्षेत्र भी मन के कार्य क्षेत्र की अपेक्षा काफी विस्तृत लोकाकाश की परिधि में जीवाणु जगत् के क्षितिज पर्यंत परिव्याप्त है । समनस्क और अमनस्क जीव-जगत को स्पर्शित किया हुआ है । मानसिक शक्ति के अभाव में सूक्ष्म किंवा स्थूल शरीर और शरीर के अवयवों का काम रुका नहीं, अपितु शरीर की प्रवृत्ति सतत चालू रही है ।

परंतु ज्ञातव्य है कि - ऐन्द्रिय (इन्द्रिय-सम्बन्धी) शक्ति के अभाव में भौतिक शरीर की स्थिति अति शोचनीय बन जाती है । इन्द्रिय-बल प्राण क्या है ? मेरी दृष्टि में विद्युत तरंगों का एक समूह है । एक तरह से नेगेटिव और पोजेटिव के मिश्रण का रूप है । जब विद्युत तरगें केन्द्र के साथ जुड़ जाती हैं । तभी प्रकाश का वातावरण निर्मित होता है । दोनों शक्तियाँ जहाँ तक अलग-थलग कार्यरत रहती है, वहाँ तक केन्द्र में इधर-उधर लगे सभी बल्ब कार्य करने में सक्षम नहीं होते हैं । अंधकार का एक छत्र साम्राज्य फैला रहता है ।

उसी प्रकार पांचों इन्द्रियाँ, विद्युत तरंगों से विहीन बल्ब के सदृश रही हुई हैं । बल-प्राणों की तरंगें ज्योंही इन्द्रियों के साथ जुड़ जाती हैं बस निष्क्रिय निष्प्रयोजन बनी वे इन्द्रियां दनादन अपने-अपने कार्यक्षेत्र में सक्रिय हो जाती हैं । क्योंकि - बल प्राणों का साथ जो मिला । बल-प्राण शक्ति के अभाव में प्राणियों के प्रत्येक कार्य कलाप खतरे के बिंदु को छूने लगते हैं गति-शील प्रवृत्तिमोह में अव्यवस्था का होना स्वाभाविक है । दिल - दिमागों में उभरे हुए व्यक्त या अव्यक्त, प्रगट किंवा प्रच्छन्न, गोपनीय या अगोपनीय मनोभावों की अभिव्यक्तियां, माध्यम के अभाव में उद्घोषित उद्घाटित होना संभव नहीं । इसी प्रकार वाक् शक्ति का प्रगटीकरण क्या शक्य है ? बल्ब का सही स्थिति में रहना उतना ही आवश्यक है जितना विद्युत तरंगों का भी । बल्ब की गड़बड़ी तरंगों को पकड़ नहीं पायेगी और तरंगों की शिथिलता बल्ब को आलोकित कैसे करेगी ? दोनों एक दूसरे के पूरक रहे हैं । वस्तुतः दोनों का व्यवस्थित होते रहना जरूरी है । ठीक उसी प्रकार बल्ब सदृश इन्द्रियां हैं । इन्द्रियों का स्वस्थ रहना आवश्यक है और विद्युत सदृश बल-प्राण हैं । दोनों के सहयोग से ही क्रियाओं की निष्पत्ति किंवा पूर्णता होती चली जाती है ।

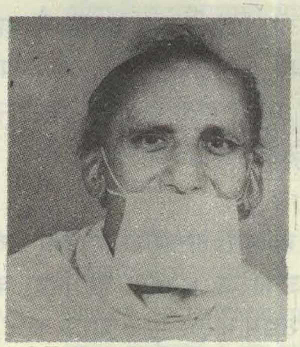

रमेशमुनि महाराज

जैन दर्शन का मनोवैज्ञानिक तर्क यथार्थ धरातल पर एक नये आयाम को उद्घाटित करता है । उसका यह उद्घोष है कि मनः पर्याप्ति के पूर्व ही इस पार्थिव शरीर के साथ स्पर्शेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, चक्षु-इन्द्रिय और कर्णेन्द्रिय इस प्रकार पांचों इन्द्रियों के उद्भव का एक व्यवस्थित क्रम अनादि काल से चालू रहा है । इस क्रम बद्ध व्यवस्था प्रणाली को आज का विज्ञान भी मान्य करता है । उक्त क्रमानुसार ही इन्द्रियों का सम्बन्ध शरीर के साथ और शरीर का सम्बन्ध इन्द्रियों के साथ चिरकाल से जुड़ता रहा और बिछुड़ता रहा है । एकेन्द्रिय (पृथ्वी-अप-तेउ-वाय-वनस्पति अर्थात ५२ लाख जीव योनिक) सत्वों के साथ केवल स्पर्शेन्द्रिय का, द्वीन्द्रिय (छोटे-छोटे कीटाणु अर्थात् दो लाख जीवयोनिक) प्राणियों के साथ स्पर्श और रसनेन्द्रिय का त्रीन्द्रिय (कीड़े-मकोड़े-जूं-लीक-खटमल इत्यादि (दो लाख जीव योनिक) प्राणियों के साथ स्पर्श-रसना एवं घ्राणेन्द्रिय का, चतुरिन्द्रिय (मक्खी, मच्छर, बिच्छू, पतंगें इत्यादि - दो लाख जीव योनिक) प्राणियों के साथ स्पर्शन-रसना,घ्राण और चक्षु-इन्द्रिय का इसी प्रकार पंचेन्द्रिय (जलचर, थलचर, खेचर, उरपर, भुजपर - मनुष्य - नैरयिक और देव अर्थात २६ लाख जीव योनिक) जीवों के साथ स्पर्श, रसना घ्राण, चक्षु और कर्णेन्द्रिय का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है । शरीर की निष्पत्ति के साथ ही इन्द्रियों के उद्गम का श्री गणेश हो जाता है । सूक्ष्म किंवा स्थूल शरीर हो उसका महत्व इन्द्रियों के होने पर ही है । वरना शरीर का क्या महत्व ? वह केवल मांस-पिंड ही माना जायेगा ।

वस्तुतः इन्द्रियों के सद्भाव में मनः **पर्याप्ति** की **भजना** है ।

अर्थात् द्रव्य मन हो भी सकता है और नहीं भी । परन्तु मन की सत्ता में इन्द्रियों का होना निश्चित है जो मन के कार्य क्षेत्र को विकसित करने में आदेश को शिरोधार्य करने में आगे बढ़ाने में, प्रत्यक्ष किंवा परोक्ष रूप में, अपने-अपने कार्य क्षेत्र में रहकर सभी इन्द्रियां पूर्णतः सहयोग करती रही हैं । तो इधर इन्द्रियां अपने-अपने कार्य क्षेत्र की एक नियत परिधि में कार्यरत रही हैं । इस अपेक्षा से इन्द्रियों का महत्व मनः पर्याप्ति के उद्भव के पूर्व ही उद्घोषित और उद्भासित मान्य किया है ।

साधन के अभाव में साधक क्या करेगा ? साध्य को प्राप्त करने के लिये साधक को तत्सम्बन्धी साधनों का यथोचित उपयोग करना आवश्यक है। भले साध्य-भौतिक हो या अध्यात्म/स्वर्ग हो या अपवर्ग। तदनुसार ऐन्द्रिय शक्ति को भी आवश्यक साधन माना है। जिनके द्वारा देहधारी भले वे विकसित हों या अविकसित, मूक हों या अमूक, समनस्क हों या अमनस्क-अर्थात-प्राण-जीव-सत्व सभी उन्हीं इन्द्रियों के माध्यम से अपनी कायिक-वाचिक और मानसिक आवश्यकताओं की आंशिक पूर्ति करने में सफल होते हैं और हिताहित ज्ञान-विज्ञान से परिचित भी ।यह निर्विवाद सत्य है कि चैतन्य शक्ति का सहयोग प्रतिपल प्रतिक्षण के बिना देह धारियों के द्रव्यमन और भाव मन से प्रादुर्भूत अच्छे बुरे संकल्प-विकल्पों की तरंगें न साकार हो पाती है और न प्रगट ही..... ।

विश्व के विराट कोषागार में प्रतिक्षण अगणित क्रियाएं संचालित हैं। कुछ क्रियाएँ किसी न किसी साधना द्वारा संचालित हुआ करती हैं। यद्यपि क्रियाओं का सम्बन्ध कर्ता के साथ जुड़ा हुआ है। फिर भी कर्ता किसी न किसी माध्यम पर आधारित रहता है। वस्तुतः साधन अगर शिथिल हो, कमजोर हो तो वह कर्ता अपनी योजना में सफल नहीं हो पायेगा भले वे क्रियाएं शारीरिक, मानसिक या वाचिक हों, इसी प्रकार घर - परिवार - गांव - नगर - देश सम्बन्धी हों या अध्यात्म साधना से जुड़ी हों। सजीव इन्द्रियों के माध्यम से ही पूर्ण होती देखी जाती हैं। मैं सुन रहा हूँ। देख रहा हूँ। सूँघ रहा हूँ। चख रहा हूँ और स्पर्शानुभव कर रहा हूँ। उक्त क्रियाएं इन्द्रियों के द्वारा ही पूर्ण होती हैं।

पांचों इन्द्रियों में स्वाभाविक भिन्न-भिन्न विशेषता वाले भिन्न-भिन्न यंत्र नियोजित हैं। एक विलक्षण नैसर्गिक व्यवस्था का प्रावधान है। कर्णेन्द्रिय में बल प्राण रूप यंत्र हुआ है उसका काम है - श्रव्यध्वनियों की तरंगों को अपनी ओर आकृष्ट करना, पकड़ना। नाक में भी एक ऐसे यंत्र की व्यवस्था है जो केवल गांधिक पुद्गलों के परमाणुओं को अपनी ओर खींचता रहता है। रसनेन्द्रिय में भी वह यंत्र है जो पंचविध रसद पुद्गल परमाणुओं का ज्ञान करवाता है। स्पर्शेन्द्रिय में नियोजित यंत्र-हल्के भारी, शीत, उष्ण, रुक्ष स्निग्ध, कर्कश, कोमल पुद्गलों की अनुभूति करवाता रहता है। चक्षु-इन्द्रिय में स्थापित यंत्र की विलक्षणता न्यारी है। दूरस्थ किंवा समीपस्थ दृश्य-मान चीजों का ज्ञान कराता चला जाता है।

बल-प्राण बनाम यंत्र के बिगड़ने पर या उसकी पकड़ शक्ति शिथिल होने पर वे प्राणी बहरे, अंधे, काने, लूले, लंगड़े-मूक की कोटि में गिने जाते हैं फिर उन्हें कृत्रिम साधनों का सहारा लेना होता है।

बुराई भलाई में सुकृत-विकृत में, हिंसा, अहिंसा में सत्यासत्य में रागात्मक-द्वेषात्मक प्रवृत्ति में, आस्रव-संवर में उक्त पांचों इन्द्रियों का सक्रिय योगदान रहा है। वस्तुतः अपेक्षा दृष्टि से ऐन्द्रिय शक्ति की ऊर्जा देहधारियों के लिये हानिकारक भी और लाभदायक भी रही है। पुण्य-सकृत में सेवा-स्वाध्याय में ज्ञान-दर्शन-चरित्र की अभिवृद्धि में, देव-गुरु की भक्ति में सद्व्यय करना लाभदायक सिद्ध हुआ है और मुक्ति का हेतु माना है।

अन्याय-अनीति में, हिंसा-हत्या में, चोरी, शिकारी, भ्रष्टाचार, अनाचार मार्गों में शक्ति के स्त्रोतों का दुरुपयोग-दुखवर्धक, वधरूप एवं अधोगति का प्रतीक माना है। मतलब यह कि सुगति किंवा दुर्गति में जीवात्माओं को धकेलने में इन्द्रियाँ भी कारण भूत रही हैं। इन्द्रियाँ वे नालियाँ रही हैं जिन मार्गों से सतत मिथ्यात्व-अविरत, प्रमाद, कषाय और योगिक प्रवृत्ति रूपी गंदगी का प्रवाह अर्थात-पापस्त्रव जीवन रूपी घर में एकत्रित होता रहता है। उक्त विपरीत प्रवृत्ति पर जब नियन्ता अंकुश लगाने में सफल हो जाता है, तब सत्यं शिवं-सुंदरम् का प्रतीक संवर धर्म की फसल होने लगती है। यह साधक की सामयिक विवेकता पर निर्भर है।

इन्द्रिय विज्ञान के सम्बन्ध में जितना गहन गंभीर विश्लेषण-विवेचन जैनागम वाङ्मय में .उपलब्ध होता है. उतना अन्य धर्म ग्रन्थों में नहीं मिलता है। इन्द्रिय-संस्थान, इन्द्रिय-ग्राह्यशक्ति, इन्द्रिय विषयक भेद-प्रभेद, इन्द्रिय अवगाहना, इन्द्रियअवगाहित आकाश प्रदेश, एवं कामी इन्द्रिय और भोगी इन्द्रिय इत्यादि मुद्दों पर सविस्तार उल्लेख मिलता है।

स्पर्श - इन्द्रिय

स्पर्शेन्द्रिय की परिव्याप्ति शरीर पर्यन्त सभी इन्द्रियों में पाई जाती है। इस कारण इसका महत्व पर्याप्त माना है। कर्कश-कोमल, गुरु, लघु, शीतोष्ण और स्निग्ध-रुक्ष। सामान्य तया उक्त आठों विषयों के ज्ञानाज्ञान की अनुभूति चैतन्य को करवाना, यह स्पर्शेन्द्रिय का अपना धर्म है। इसका यही नियत कार्यक्षेत्र रहा है। स्पर्शेन्द्रिय की यह सीमित परिधि इन्हीं आठ विषयों में रही है। इसमें सूक्ष्मतम नैसर्गिक एक चुम्बकीय यंत्र लगा हुआ है। वस्तुका स्पर्श होते ही वह यंत्र सक्रिय बनकर अपने स्वामी (जीव) को सूचित करने में तनिक भी देर नहीं करता है। वस्तुतः इसको योगी इन्द्रिय माना है। इसका आयाम विष्कुम्भ (लम्बाई-चौड़ाई) जघन्योत्कृष्ट अंगुल के असंख्यातवें भाग एवं एक हजार योजनाधिक मानी है।

उपर्युक्त आठों विषय सचिताचित, मिश्र, शुभाशुभ और अंत में राग-द्वेष की परिणतियों में परिणत होते हुए आगे चलकर ८६ विकारी विकल्पों में फैल जाते हैं। स्पर्शेन्द्रिय का संस्थान (आकार) नाना प्रकार माना है। इसकी विषय ग्राह्य शक्ति कम से कम अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट चारसौ धनुष्य से लेकर नौ योजन दूरस्थ पदार्थों को आकृष्ट करने की क्षमता रही हुई है। उक्त विकारी परिणतियों से आत्मा का हित नहीं, अहित ही हुआ है। शुभ स्पर्शों से राग की निष्पत्ति और अशुभ स्पर्शों से द्वेष भावों की वृद्धि होती रही है। जैसा कि आगम में कहा है -

शरीर, स्पर्शों को ग्रहण करता है और स्पर्श, शरीर का ग्राह्य रहा है। सुखद स्पर्श राग का और दुखद स्पर्श द्वेष का कारण है।

जो प्राणी सुखद स्पर्शों में अति आसक्त होता है। वह जंगल के सरोवर के ठण्डे पानी में पड़े हुए और मगर द्वारा ग्रसे हुए भैंसे की तरह अकाल में ही मृत्यु पाता है।

रसना - इन्द्रिय

रसनेन्द्रिय के माध्यम से द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय प्राणी कवलाहार ग्रहण करते हैं। शरीर के समस्त केन्द्रों अवयवों एवं नाड़ी संस्थानों को इसी इन्द्रिय द्वारा रस मिलता रहा है। रसद स्त्रोत का माध्यम यही इन्द्रिय है। इसी प्रकार वाक् शक्ति की अभिव्यक्ति इसी से होती है।

इसका संस्थान (आकार) खुरपा जैसा माना है। अनंत प्रदेशी यह असंख्य आकाश प्रदेशों में अवगाहित है। इसकी चौड़ाई जघन्योत्कृष्टव्अंगुल के असंख्यातवें भाग और लम्बाई दो से नौ अंगुल प्रमाण मानी है। यह भोगी और न्यूनाधिक ६४ धनुष्य से लगाकर ६ योजन दूरस्थ वस्तुओं को अपना ग्राह्य विषय बनाने की क्षमता रखती है।

तीखा-कड़वा, कसेला, खट्टा और मीठा, इन पांच विषयों में रसना की गति रही है। इन्हीं पांच स्वादों का परिज्ञान अपने स्वामी जीव को करवाती रहती है। उक्त पांचों भेद सचिताचित्त, मिश्र शुभाशुभ और राग द्वेष के रूप में परिणत होकर साठ विकारी परिणतियों में रूपांतरित होते हैं। राग-द्वेषात्मक पर्याय ही संसार है।

रस न किसी को दुःखी और न किसी को सुखी करता किंतु जीव स्वयं अमनोज्ञ रसों में द्वेष करके अपने ही किये हुए भयंकर द्वेष से दुःखी होता है। जिस प्रकार मांस खाने के लालच में फंसा हुआ मच्छ कांटे में फंसकर जीवन लीला समाप्त कर देता है उसी प्रकार रसों में आसक्त जीव अकाल में मृत्यु का ग्रास बन जाता है।

प्रिय रस राग का और अप्रिय रस द्वेष का कारण है। दोनों प्रकार की स्थितियों में वह समभाव रखता है। वह वीतरागी है।

घ्राण - इन्द्रिय

सुगंध किंवा दुर्गन्ध पुद्गलों को पकड़ना, यह घ्राणेन्द्रिय का विषय रहा है। नासिका इसका अपर नाम है। इसी के माध्यम से अल्पज्ञ आत्माओं को गंध का विवेक होता है। यह अनंत प्रदेशी भोगी इन्द्रिय मानी जाती है। असंख्य लोकाकाश प्रदेशों को अवगाहित करती है। आयाम, विष्कुम्भ (लंबाई-चौड़ाई) की दृष्टि से न्यूनाधिक अंगुल के असंख्यातवें भाग की मानी गई है। इसका संस्थान धमनी जैसा माना है। विषय ग्राह्य क्षमता जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की ओर उत्कृष्ट सौ धनुष्य प्रभृति नौ योजन की मानी गई है।

इसके दोनों विषय सुगन्ध और दुर्गन्ध सचित, अचित और मिश्र पर्याय में परिणत होकर राग-द्वेष की उत्पत्ति के कारण भूत बनते हैं। इस प्रकार १२ विकारी पर्यायों में परिणत होते रहते हैं।

गंध को नासिका ग्रहण करती है और गंध नासिका का ग्राह्य है। सुगन्ध राग का कारण और दुर्गन्ध द्वेष का कारण है।

जिस प्रकार औषधि की सुगन्ध से मूर्च्छित हुआ सर्प मारा जाता है, उसी प्रकार गंध में अत्यन्त आसक्त जीव अकाल में काल कवलित होता है।

चक्षु - इन्द्रिय

दृश्यमान वस्तुओं को यथारूप में प्रस्तुत करना, चक्षुइन्द्रिय का काम है । देखने का माध्यम आँख है। इसके अभाव में देहधारी प्राणी अन्धे कहलाते हैं फिर उनके लिये कदम-कदम पर शारीरिक क्रियाओं में व्यवधान और अवरोध पैदा होना स्वाभाविक है। पराधीनता का जाल पूरे शरीर पर और संपूर्ण जीवन पर्यन्त फैल जाता है। मुमुक्षु आत्मा अपने आराध्य के समक्ष प्रतिज्ञा सूत्र समर्पित करता हुआ कहता है- भंते! युगल नैत्रों के सिवाय संपूर्ण शरीर आप की आराधना में तत्पर रहेगा। आँखों के अभाव में जीव दया की परिपालना संभव नहीं। वस्तुतः इस अनुमान से चक्षु इन्द्रिय के महत्व को भली प्रकार समझ सकते हैं। इस-इन्द्रिय का संस्थान मसूर की दाल जैसा गोल माना है। अनंत प्रदेशी यह आकाश के असंख्य प्रदेशों की परिधि में परिव्याप्त है। दृश्यमान चीजें स्वतः इस इन्द्रिय के पास चलकर नहीं आती हैं। अपितु चक्षु की दर्शन शक्ति की पैठ उत्कृष्ट एक लाख योजन पर्यन्त रही है। इस कारण यह कामी इन्द्रिय मानी है।

काला, नीला, लाल, पीला और सफेद इन पांच तरह के रंग-रूपों में चक्षु की गति रही है। सचिताचित्त, मिश्र, शुभाशुभ और राग-द्वेष के पर्यायों में परिणत हुए भेद-प्रभेद साठ विकारी विकल्पों में परिव्याप्त होते हैं। फलितार्थ यह हुआ कि अभीष्ट रूप के प्रति राग और अनिष्ट रूप के प्रति द्वेष पैदा होता है। जैसा कि आगम में कहा है.....

रूप को ग्रहण करने वाली चक्षु-इन्द्रिय है और रूप चक्षु के ग्रहण होने योग्य है। प्रिय रूप राग का और अप्रिय रूप द्वेष का कारण है।

जिस प्रकार दृष्टि के राग में आतुर होकर पतंगा मृत्यु पाता है उसी प्रकार रूप में अत्यन्त आसक्त होकर जीव अकाल में ही मृत्यु पाते हैं।

श्रोत्र - इन्द्रिय

सुनने की समस्त क्रियाएं इसी इन्द्रिय से संपन्न होती हैं इसकी कार्यशीलता के अभाव में वे नर-नारी बहरे कहलाते हैं। प्रत्येक जीवों को यह इन्द्रिय प्राप्त नहीं है। केवल पंचेन्द्रिय देह धारियों को ही प्राप्त है। वे ही सुनने के पात्र बने हैं और उन्हीं जीवों को युगल कर्ण जोड़ी मिली है। श्रोत्रेन्द्रिय का संस्थान कदम फूल सदृश माना है। अन्य इन्द्रियों की तरह यह भी अनंत प्रदेशी और असंख्य आकाश-प्रदेशों में अवगाहित रही है। यह कामी इन्द्रिय है। शब्दों को श्रवण कर कामोत्पत्ति होना स्वाभाविक है। शब्दों की गड़गड़ाहट जब कानों में लगे यंत्र से टकराती है तब तत्काल ज्ञान हो जाता है कि निःसृत यह शब्दावली जीव-अजीव या मिश्र तत्त्व की है।

अच्छी-बुरी या शुभाशुभ है । शब्द तरंगों को पकड़नें की क्षमता इसकी जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट एक योजन से १२ योजन पर्यन्त रही है । शब्दावली कभी शुभ रूप में तो कभी अशुभ रूप में परिवर्तित होती है । तत्पश्चात राग और द्वेष की परिणतियों में परिणत होकर १२ विकारी भेदों में फैल जाती हैं । कहा भी है -

शब्दों में मूर्च्छित हुआ प्राणी, मनोहर शब्द वाले पदार्थों की प्राप्ति, रक्षण एवं व्यय में तथा वियोग की चिंता में लगा रहता है, वह संभोग काल में भी अतृप्त ही रहती है । फिर उसे सुख कहाँ है ?

'जे गुणे से आवट्टे जो आवट्टे से गुणे' (आचारांगसूत्र) अर्थात-शब्द-रूप-रस-गंध और स्पर्श, उक्त पांचों इंन्द्रियों के मौलिक गुण हैं । संसार का भयंकर भ्रमण शील यह जाल है । जिसके प्रभाव से पामर प्राणी भवोदधि में जन्म-मरण किया करते हैं । पांचों इन्द्रियां और मन, दोनों शब्दादि गुणों से प्रभावित होते रहते हैं और इसीसे उत्तेजना और तमोगुण की वृद्धि होती है । इन्द्रिय जन्य विषयों में एक ऐसा लुभावना मोहाभिभूत करने वाला आकर्षण रहा हुआ है कि देहधारी भ्रमित हुए बिना नहीं रहता । इन्द्रियों और शब्दादि विषयों का एक ऐसा सम्बन्ध है जहां इन्द्रियों की सत्ता का सद्भाव है । वहाँ शब्द रूप-गंध-रस-स्पर्श इत्यादि गुण रहेंगे । दोनों के बीच देहधारी भवजंतु के शिकार होते रहे हैं । यथार्थ जानकारी के अभाव में मूर्ख-अज्ञानी आत्माएँ इन्द्रिय जन्य सुखों को ही असली सुख मानती रही हैं - जैसा कि कहा भी है -

जो सुख इन्द्रियों से प्राप्त होता है वह पराश्रित, बाधा सहित, बंध का कारण और विषम होने के कारण वास्तविक सुख नहीं, दुःखरूप है ।

इन्द्रिय रूपी चपल घोड़े नित्य दुर्गति मार्ग पर दौड़ते हैं । जिस तरह काठ में जन्म लेने वाले घूण जंतु काठ को भीतर ही भीतर कमजोर कर देते हैं । उसी प्रकार मनुष्यों के चरित्र को इन्द्रियाँ भीतर ही भीतर असार कर देती है ।

ज्ञान-ध्यान और तपोबल से इन्द्रिय-विषयों-कषायों को बलपूर्वक रोकना चाहिये । जैसा कि लगाम के द्वारा घोडो को बलपूर्वक रोका जाता है । वश किया हुआ बलिष्ट घोड़ा जिस प्रकार बहुत लाभदायक होता है उसी प्रकार धैर्य रूपी लगाम द्वारा वश की हुई स्वयं की इन्द्रियाँ तेरे लिये लाभदायक होगी । अतएव इन्द्रियों का निग्रह होना चाहिये ।

उसी का इन्द्रिय निग्रह प्रशस्त होता है, जिसका मन शब्द-रूप-गंध-रस और स्पर्श में न तो अनुरक्त होता है और न द्वेष करता हैं ।

इन्द्रिय सम्बन्धी इस निबन्ध का अध्ययन करके प्रबुद्धआत्माओं को अनासक्त भाव का आलंबन लेना चाहिये । अनासक्त भाव, जीवात्माओं को जितेन्द्रिय बनाने वाला राजमार्ग, धर्म मार्ग है और मोक्ष-प्राप्ति में पूर्ण सहयोगी भी ।

मधुकर मौक्तिक

स्वार्थ अधम प्रकृति है । स्वार्थपना अधम प्रवृत्ति है और आत्मा की अवनति का उपाय है । ऐसा मलिन स्वभाव—ऐसी मलिन प्रवृत्ति भव को निःशेष समाप्त होने नहीं देती । इसमें कोई शक नहीं है कि जहाँ स्वार्थ है, वहाँ भवस्थिति अपना साम्राज्य मजबूत करके रहती है ।

जागृति के दिनमणि का प्रकाश फैलते ही आधि, व्याधि और उपाधि की रोगत्रयी पलायन कर जाने में ही अपना भला मानती है और फिर जीव को परम अर्थ की अनुभूति होने लगती है । यह अनुभूति उसे स्वभाव के शिखर पर बिठा देती है । तो ऐसी है स्वार्थ, परार्थ और परमार्थ की पगडंडी ।

*****

प्रार्थना प्रार्थनीय से की जाती है । जो प्रार्थनीय है, उसका विश्लेषण भी आवश्यक है । सेवक—स्वामित्व के भाव को समझ कर हृदय में उसे मूर्तरूप प्रदान करना भी वांछनीय है । कूड़ा—करकट दूर किये बिना रंग कर्म टिक नहीं सकता । वस्तु में जो तेज आना चाहिये—वह आ नहीं सकता । इसलिए साफ सफाई करके धरातल को समतल बना लेना अत्यन्त आवश्यक है ।

*****

प्रार्थना तो जन्म जन्म से करते आय़े हैं, फिर भी वह आज तक प्रबल न हो सकी । कारण इतना ही है कि हमने भाव—स्वभाव को ध्यान में लेकर नहीं की, अपितु भव की तरफ ध्यान में रख कर की ।

*****

'वीतराग ! जगत में परमोत्तम ! पुरुषोत्तम देव ! आपकी जय हो । इसीलिए कि आप जेता हैं, विजेता हैं, त्राता हैं और संसार के प्राणी मात्र को विजेता बनने का प्रबल सामर्थ्य प्रदान करनेवाले हैं ।